# ज्यां पाल सार्त्र के अस्तित्ववाद की समाजशास्त्रीय व्याख्या

**डॉ. नीता बाजपयी**[1]

**डॉ. शकील हुसैन**[2]

https://orcid.org/0000-0003-1491-6784

**संक्षेप**

हीगल के बाद यूरोप के सामाजिक राजनीतिक चिंतन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला दर्शन है सार्त्र का अस्तित्ववाद। सार्त्र एक जटिल दार्शनिक है वह बहुत ही जटिल भाषा में साहित्य के माध्यम से सामाजिक राजनीतिक दर्शन देता है । इस शोध पत्र में यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य के अस्तित्व की क्या स्थिति है और एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानवीय अस्तित्व के बारे में सार्त्र ने क्या कहा है । सार्त्र को समानतः समाजशास्त्र में कम ही पढ़ा जाता है उसे एक राजनीतिक चिन्तक माना जाता है परंतु प्रस्तुत शोध पत्र में उसके अस्तित्व वाद की समाजशास्त्रीय विवेचना करने का प्रयास किया गया है । जिसमें मूल अध्ययन सामग्री सार्त्र की पुस्तक 'बीइंग एंड नथिगनेस' और 'नोशिया' है इसके अलावा सार्त्र के अस्तित्ववाद पर लिखी गई कुछ अन्य क्लासिक किताबों को भी अध्ययन सामग्री के रूप में प्रयुक्त किया गया है ।

**कुंजी शब्द** : अस्तित्ववाद, सार्त्र, एकांत, परायापन, उत्तर औद्योगिक समाज, बीइंग, समाज, मनुष्य ।

## प्रस्तावना

अस्तिवाद की जड़ें किर्कगात्र (1813–1855) की रचनाओं में पायी जाती है जिसके विकास में नित्शे की रचनाओं का भी हाथ है। वे डेनमार्क के धार्मिक नेता थे और उनकी रचनाएं, इसाई धर्म के सम्बन्ध में लिखी गयी है। इसके अनुसार इसाई धर्म की बुद्धि के द्वारा नहीं बल्कि केवल भावना के आधार पर समझा जा सकता है। सत्य उसकी दृष्टि में अपनी स्वतंत्र सत्ता नही रखता वो व्यक्तिमूलक है और इसकी उत्पति मनुष्य के हाथ की गहरी आकांक्षाओं में होती है। किर्कगात्र का प्रमुख आग्रह सत्य को व्यक्तिमूलक मानने के सिद्धान्त पर था और यहीं सिद्धान्त बाद में समस्त अस्तित्वादीयों का आधार बन गया। नित्शे वह पहला दार्शनिक था जिसने विश्व में व्यक्ति के परापन और बाहर की दुनिया से मूल्यों को ग्रहण करने की उसकी क्षमता का गहरायी के साथ चित्रण किया है। यथापि अर्वाचीन अस्तित्वाद का प्रमुख उन्नायक ज्यां पालं सार्त्र को माना जाता है लेकिन अस्तित्वाद के विकास मे एलबर्ट कामू , जैसपर्स आदि का भी मुख्य योगदान रहा है। यू जी मीहान के शब्दों में – ''अस्तित्ववाद को वैज्ञानिक बुद्धिवाद, अव्यक्तिकरण, तानाशाही व्यवस्था और

1.सहायक प्रध्यापक समाजशास्त्र, राज्य सम्पर्क अधिकारी , एन एस एस छत्तीसगढ़ शासन

2.विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान , शासकीय वी वाय टी स्नातकोत्तर ,स्वशासी महाविद्यालय दुर्ग छत्तीसगढ़

अंध विश्वास की प्रतिक्रिया माना जा सकता है।'' एडवर्ड बर्न्स के अनुसार 'व्यक्ति दिन प्रतिदिन अधिकाधिक मात्रा में अपना व्यक्तित्व खोता जा रहा है उन्हें ऐसा दिखायी देता है कि व्यक्ति बहुत से पदार्थों में से एक पदार्थ मात्र बनकर रह गया है।'' सृष्टि के इस वृहद यन्त्र के मूल मे व्यक्ति ही है । समाज मे व्यक्ति के इस पतन का उत्तरदायित्व न केवल विज्ञान और तकनीक पर है बल्कि यांत्रिक और बुद्धिवादी चिन्तन के अतिरिक्त उसका समस्त आधार आधुनिकीकरण की जटिल व्यस्था पर भी है।

सात्रं के विचार मुख्यतः उसकी दार्शनिक कृति 'Being and Nothings' में मिलते हैं। उसकी यह कृति मुख्यतः एक तात्विक अध्ययन है और इसमें अस्तित्व की विभिन्न इकाइयों के सम्बन्ध में विचार किया गया है। 'Being in itself Being fof itself Being for others and Being in the world' इन चारों इकाइयों में विवेचनार्थ सांत्र ने जिन प्रमुख तत्वों का प्रयोग किया हैं वे हैं क्रमशः स्वतन्त्रता, उत्तरदायित्व, परिस्थिति और संघर्ष। सात्रं का अस्तित्वादी विवेचना मार्क्स, हाइडेगर की विचारधाराओं का सम्मिश्रण है। वह अस्तित्ववाद को परिभाषित करते हुए कहता है कि 'अस्तित्ववाद से हमारा अभिप्राय एक ऐसे सिद्धान्त से है जो मानवीय जीवन को सम्भव बनाता है और साथ ही इस बात की घोषण भी करता है कि प्रत्येक सत्य और प्रत्येक कार्य को मानवीय वातावरण में मानवीय वैयक्तिकता के आधार पर समझा जा सकता है।''

1- Being in itself

अस्तित्व की प्रथम इकाई की विवेचना करता हुआ सात्रं कहता है कि ''संसार में कुछ ठोस वस्तुएं हैं जो अपारदर्शी हैं। वे वहीं है को वे हैं।'' इनकी कोई बुद्धिजीवी या तर्कवादी व्याख्या सम्भव नहीं है। वे स्वतः व्याख्यायित हैं। ये अस्त व्यस्त वस्तुएं एक प्रकार की Absurdity (मुर्खता) की स्थिति उत्पन्न करती है। जब मनुष्य इस मुर्खता के बारे में सोचता है वह छंनेमं (मिचली) की भावना विकसित कर लेता है।

2– Being for itself

मनुष्य एक चौतन्य जीव है किन्तु उसकी चौतन्यता की वास्तविकता हेतु क्रियाशीलता आवश्यक है। यहां पर सार्त्र अपना च्वेपइपसपजल का विचार रखता है। क्योंकि सात्र की दृष्टि में प्रत्येक मनुष्य अपने कार्यों द्वारा एक च्वेपइसम स्थिति को प्राप्त करना चाहता है किन्तु उसकी चेतना और Possible स्थिति के बीच सदैव एक निश्चित दूरी बनी रहती है। अतः मनुष्य यह जानकार दुखी होता है कि वह अपनी पहचान को निश्चित स्तर तक बनाने में असमर्थ है। मनुष्य के प्रश्न करने की सार्थता के सन्दर्भ में सात्रं नकारात्मकता के सिद्धान्त को व्याख्या देने का प्रयास करता है। सात्रं की मान्यता है कि नकारात्मकता का विचार हर प्रश्न कें निहीत होता है। यह विचार ही मनुष्य में Nothingness की भावना को जन्म देता है।

"शून्यवाद बीसवीं सदी के पहले भाग के धर्मनिरपेक्ष मानवतावादी विचार की प्रमुख अवधारणाओं में से एक था। जैसा कि माइकल नोवाक ने लिखा है, ''1870 से 1940 तक, शून्यता का अनुभव यूरोप के शिक्षित वर्ग में व्याप्त था'' (2)। शायद शून्यवाद का सबसे प्रभावशाली सिद्धांत जीन–पॉल सार्त्र (1905–1980) से आया, जो एक उपन्यासकार (नौसिया 1938) और नाटककार (नो एग्जिट 1944) दोनों के रूप में प्रसिद्ध थे, लेकिन बीसवीं सदी के सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिकों में से एक और अस्तित्ववाद के जनक के रूप में सबसे ज्यादा जाने जाते थे। यहाँ ध्यान उनके प्रमुख दार्शनिक कार्य, बीइंग एंड नोथी पर है।"

( फ्रैंकलिन 2012)

Nothingness सात्रं के सम्पूर्ण चिन्तन में प्रभावी है। इसका अर्थ एक प्रकार की दूरी है जो मनुष्य तथा संसार के मध्य होती है।

सात्रं का विचार है कि चौतन्य जीव सदैव उद्भव की अवस्था में रहता है। वह जो बनता है वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसका लक्ष्य क्या है? और इस लक्ष्य के चयन में वह पूर्णतः स्वतन्त्र है। सात्रं के विचार में स्वतन्त्रता पूर्णतः Authority of Choice है। Authority of Choice के सम्बन्ध में सात्रं मनोवैज्ञानिक निश्चिततावाद तथा आर्थिक निश्चिततावाद का विरोधी है। सात्रं कहता है कि मनुष्य Authority of Choice में स्वतंत्र है लेकिन वह कोई भी वस्तु चुनने में स्वतन्त्र नहीं है। उस पर परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है– एक कैदी इस बात के लिए स्वतन्त्र नहीं है कि वह जेल के बाहर घुम सके किन्तु वह जेल से भागने न भागने का निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता सम्बन्धी ये विचार उसके उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार है। सात्रं के अनुसार उत्तरदायित्व के दो रुप हैं–

1- सार्वजनिक स्वरुप,

2- व्यक्तिगत स्वरुप।

1–व्यक्तिगत स्वरुप का अर्थ है व्यक्ति अपने कार्यों का स्वयं उत्तरदायी है। इस तथ्य से विमुख व्यक्ति Spirit of Seriousness को जन्म देता है व Bad Faith प्रदर्शित करता है। सात्रं के अनुसार Bad Faith में होने का अभिप्राय यह है कि कोई कार्य अनिच्छा से बाह्य शक्ति के दबाव के कारण किया जाए। Spirit of Seriousness सदैव स्वतन्त्रता के तत्त्व की अवहेलना करती है और Bad Faith उत्तरदायित्व को अस्वीकार करने का परिणाम है।

"अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में, कई दार्शनिकों ने कार्टेशियन व्यक्तिपरक अहंकार के सक्रिय और रचनात्मक कार्य और पर्याप्त–स्थिति को कमजोर या बदलने के लिए अन्य अवधारणाओं का उपयोग करने का प्रयास किया। मेन डी बिरान ने कार्टेशियन कॉगिटो? ''मैं सोचता हूँ'' को अपने स्वयं के शब्द वोलो? ''मैं

करूँगा'' द्वारा फिर से ढालने का प्रयास किया। सबसे पहले, बिरान ने मोई के सक्रिय पहलुओं को अहंकार के रूप में मानाय फिर, अहंकार और खुद (''सोई–मेमे'') की पहचान करके, उन्होंने सोच और पूर्ण अस्तित्व के पर्याप्त अहंकार (आत्मा) की स्थापना के लिए डेसकार्टेस की आलोचना की।"
( वेमिंग एवं वान 2007)

2–उत्तरदायित्व के सार्वजनिक स्वरुप से सात्रं का आशय है व्यक्ति अपने क्रियाकलापों के माध्यम से सम्पूर्ण संसार के कार्यों हेतु उत्तरदायी है।

## 3- Being for others

इससे सात्रं का तात्पर्य है मनुष्य अर्थात् Being for itself का दूसरो के साथ सम्बन्ध है। मनुष्य अपने अस्तित्व से और दूसरों से परिचित है। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार की अवस्था में दूसरों का अस्तित्व सम्मिलित है और प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र हैं। इस विरोधाभास की स्थिति का परिणाम होता है अनिवार्य संघर्ष। वह तर्क देता है कि जब मनुष्य परस्पर संचार करते हैं तो 'मूल' व 'पाप' के प्रयत्नों का जन्म होता है। सात्रं कहता है कि जब एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से सपर्क होता है तो उसे लगता है कि उससे एक चौतन्य प्राणी की तरह नहीं वरन् एक अचौतन्य प्राणी की तरह व्यवहार कर रहा है। ऐसी स्थिति में यह लगता है कि वह अपनी परिस्थितियों का पूर्ण स्वामी नहीं है इससे जो भावना जन्म लेती है उसे सात्रं 'शर्म' की संज्ञा देता है। संघर्ष के व शर्म के प्रत्यय व्यक्तियों के मध्य सम्बन्धों की विशेषताएं हैं।

## 4- Being in the world

इससे सात्रं का अभिप्रायः चैतन्य जीवों के साथ ही चौतन्य जीवों और अचैतन्य वस्तुओं के साथ सम्बन्ध से है। यह संसार विशिष्टतत्त्वों से परिपूर्ण है।

"जीन–पॉल सार्त्र ने अपनी पुस्तक 'बीइंग एंड नथिंगनेस' में जीवित शरीर और अंतर–शारीरिक संबंधों का एक व्यापक विवरण विकसित करने का प्रयास किया है, जो चिंतनशील आत्म–चेतना के गठन में वस्तुकरण की भूमिका पर विचार करता है।" ( लूना : 2012)

मनुष्य केवल जीव नहीं है, वरन शरीर भी है। मनुष्य का यह एहसास कि वह इस अस्त व्यस्त संसार का एक हिस्सा है उसके मन में Nausė (मिचली), Anxiety (चिन्ता) और Absurdity (मुर्खता) की भावनाओं को जन्म देता है।

**सांत्र अस्तित्वाद व मार्क्सवाद का समन्वय :–**

सात्रं ने अपनी पुस्तक 'Critique of Dialectical Reason' में अस्तित्वाद मार्क्सवाद में समन्वय का प्रयास करता है। उसकी मान्यता है कि जिसक प्रकार किर्कगार्द का चिन्तन हीगल की प्रतिक्रिया का एक रुप था। उसी प्रकार मार्क्स का चिन्तन भी हीगल के चिन्तन का एक प्रतिक्रियात्मक रुप था। हीगल ने व्यक्ति के लक्ष्य के साथ अपना तादाम्य स्थापित कर लेने पर बल दिया था। मार्क्स का मत था कि राज्य जैसी बाह्य और आर्थिक वस्तु के साथ व्यक्ति के तादात्म्य स्थापित कर लेने से समाज में उसकी पराएपन की समस्या नहीं सुलझायी जा सकती। मार्क्स के अनुसार व्यक्ति अपने को समाज से पराया तब महसूस करता है जब उत्पादन की शक्तियों और उत्पादनों के सम्बन्धी के बीच संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। आज के पूंजीवादी समाज में यह संघर्ष भयंकर रुप में विद्यमान है अतः व्यक्ति की उस विछिन्नता की भावना में ऐतिहासिक सत्य का रूप ले लिया है। सात्रं ने मार्क्स के इस कथन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – 'यदि व्यक्ति अपने को इस विछिन्नता की भावना से मुक्त करना चाहता है तो उसकी चेतना का जागृत हो जाना ही काफी नहीं है। व्यक्ति की अभिव्यक्ति कार्य के ठोस माध्यम से ही सम्भव है, उसके लिए यह भी आवश्यक है कि एक कान्तिकारी परिस्थितियों से वह गुजरे।'' मार्क्सवाद के कर्म और क्रांन्ति को सम्बद्ध करके सात्रं ने यह स्थापित करने की चेष्टा की थी, जबकि कीर्कगार्द व हीगल दोनों की बातें ठीक थी, मार्क्स की बातें उन दोनों से अधिक ठीक है। क्योंकि मार्क्स ने एक ओर कीर्कगार्द के समान व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व की यथार्थता को स्वीकार किया वहीं दूसरी ओर हीगल के समान पदार्थों की वास्तविकता के सन्दर्भ में ही इस यथार्थ को स्वीकार करने का प्रयास किया। ( वर्मा : 1986)

**निष्कर्ष**

अस्तित्वाद का जन्म एक औद्योगिक समाज की पृष्ठभूमि पर उसकी विशेष परिस्थितियों के सन्दर्भ में हुआ। परन्तु इन परिस्थितियों की उपस्थिति के बावजूद उसके विकास का अचानक रुक जाने का श्रेय भी सात्रं ने मार्क्सवाद के स्वयं के विकास की मार्ग में अवरुद्ध हो जाने को दिया। इसका प्रमुख कारण सात्रं के अनुसार जो 1956 तक स्वयं कट्टर साम्यवादी था। मार्क्सवाद के इस सिद्धान्त में कि मनुष्य का निर्माण वातावरण द्वारा होता है अस्तित्ववाद की इस मूल मान्यता में कि मनुष्य अपना निर्माण स्वयं करता है अन्तर्विरोध था। वस्तुतः सात्रं का विरोध मार्क्सवाद से नहीं था। वह मानता है कि मार्क्सवाद अपने आप में एक अपूर्ण सिद्धान्त है और अस्तित्ववाद उसका आवश्यक पूरक है। इस दृष्टि से ठनतदे के शब्दों में 'सात्रं शायद सबसे विचित्र प्रकार का समाजवादी था।''

व्यक्ति अपने जीवन की पद्धति स्वयं चुनता है। सात्रं की रचनाओं और उनके दर्शन शास्त्र में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का महत्व अधिक है, क्योंकि स्वतन्त्रता व्यक्ति का गौरव और आत्म सम्मान के साथ जीने की प्रेरणा देती है। स्वतन्त्रता समाज से कुछ पाने की इच्छा नहीं रखती। यह मानव स्वभाव का एक ऐसा मूल है जो मनुष्य में अर्न्तनिहीत है और जो उसे वनस्पति जीवन से भिन्न बनाता है। स्वतन्त्रता मनुष्य के लिए अत्याधिक कष्ट देने वाली वस्तु है परन्तु फिर भी मनुष्य स्वतन्त्र रहता चाहता है जिस क्षण व्यक्ति जन्म लेता है उस समय से ही वह अपने आप को पूरी तौर से उन कार्यों के लिए उत्तरदायी मानता है जो वो करता है। सात्रं के अनुसार अस्तित्ववाद का अर्थ भी यही निकलता है कि दूसरे की स्वतंत्रता के लिए भी संघर्ष करें। उसकी अपनी स्वतन्त्रता अन्य व्यक्तियों की स्वतंत्रता से भिन्न नहीं है। के अन्य व्यक्तियों की स्वतन्त्रता पर निर्भर है और अन्य व्यक्तियों की स्वतन्त्रता उसकी अपनी स्वतन्त्रता पर आधारित है। इस चिन्तन के परिणामस्वरुप ही संलग्नता अथवा प्रतिबद्धता के प्रसिद्ध सिद्धान्त का जन्म हुआ। अस्तित्ववाद पर प्रतिबद्धता के इस सिद्धान्त की स्थापना सात्र द्वारा की गयी जिसने परवर्ती चिन्तन पर बहुत प्रभाव डाला ।

**संदर्भ**

**Luna D.**(2012): Reconsidering the Look in Sartre's "Being and Nothingness"

Sartre Studies International , 2012, Vol. 18, No. 1 (2012), pp. 9-28,Berghahn Books
https://www.jstor.org/stable/42705181

Franklin J. (2012) : BUDDHISM AND MODERN EXISTENTIAL NIHILISM: JEAN-PAUL SARTRE MEETS
NAGARJUNA, Religion & Literature , spring 2012, Vol. 44, No. 1 (spring 2012), pp. 73-96
Published by: The University of Notre Dame
https://www.jstor.org/stable/23347059

Weimin M & Wang W. (2007): Cogito: From Descartes to Sartre. Frontiers of Philosophy in China , April 2007, Vol. 2, No. 2 (April 2007), pp.247-264. Brill
https://www.jstor.org/stable/27823291